IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 1, Issue 1, January 2020

# èke'kkL=h; ijiijk vkj ledkyhu lekt e ukjh% Lefr;k d vkykd e iuikB

Mk- jhrk flg
vfl0 ikQ lj bfrgkl
ifMr jkey[ku “kDy jktdh; ih th dky t] vkykij] vEcMdjuxj
ritasingh806@gmail.com

**Ikjk'k**

प्रस्तुत शोध पत्र "धर्मशास्त्रीय परंपरा और समकालीन समाज में नारीः स्मृतियों के आलोक में पुनर्पाठ" भारतीय धर्मशास्त्रीय साहित्य और आधुनिक सामाजिक यथार्थ के मध्य संवाद स्थापित करने का एक प्रयास है। अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि स्मृति–ग्रंथों—विशेषतः मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा नारद स्मृति—में नारी की जो धार्मिक, सामाजिक और वैधानिक स्थिति प्रतिपादित की गई है, वह किस प्रकार सम्मान और मर्यादा, अधिकार और नियंत्रण के द्वंद्वात्मक स्वरूप में विकसित हुई। शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि धर्मशास्त्रीय परंपरा में नारी को सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी और गृहलक्ष्मी के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की गई, किंतु साथ ही संरक्षणवादी दृष्टिकोण के माध्यम से उसकी स्वायत्तता को सीमित भी किया गया। अतः नारी की स्थिति को एकांगी दृष्टि से न देखकर ऐतिहासिक–सामाजिक संदर्भों में समझना अधिक उपयुक्त है।

**'kks/k dk eq[; fopkj**

इस शोध का मूल विचार यह है कि धर्मशास्त्रीय परंपरा में नारी की जो अवधारणा प्रतिपादित की गई है, उसे एकांगी दृष्टि से न तो पूर्णतः आदर्श माना जा सकता है और न ही पूर्णतः दमनात्मक। स्मृतियों में नारी के प्रति सम्मान, गरिमा और धार्मिक सहधर्मिता की भावना के साथ–साथ संरक्षण, नियंत्रण और मर्यादा के विधान भी समान रूप से विद्यमान हैं। अतः यह अध्ययन इस द्वंद्वात्मक स्थिति का सम्यक् विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करना चाहता है कि स्मृतियों में नारी की स्थिति को उसके ऐतिहासिक–सामाजिक संदर्भ में समझना आवश्यक है। साथ ही, समकालीन भारतीय समाज में संवैधानिक समानता, स्त्री–अधिकारों और नारी–विमर्श के आलोक में इन धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं का पुनर्पाठ कर यह विवेचना करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है कि परंपरा और आधुनिकता के मध्य संवाद किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है।

## 1- èke'kkL=h; ijiijk dh voèkkj.kk vkj Lo:i

भारतीय सामाजिक संरचना में धर्म केवल आध्यात्मिक साधना का विषय नहीं रहा, बल्कि वह आचार, व्यवहार, विधि और सामाजिक संगठन का आधार भी रहा है। इसी संदर्भ में धर्मशास्त्रीय परंपरा का विकास हुआ, जिसने समाज को नियमबद्ध करने तथा जीवन के विभिन्न आश्रमों और वर्णों के कर्तव्यों को निर्धारित करने का कार्य किया। वेदों के उपरांत स्मृति–ग्रंथों ने इस परंपरा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। विशेषतः मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और नारद स्मृति जैसे ग्रंथों ने सामाजिक आचार–संहिता, दंड–विधान, विवाह–व्यवस्था, उत्तराधिकार, संपत्ति–वितरण और स्त्री–पुरुष संबंधों के नियमों को विस्तृत रूप से

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 1, Issue 1, January 2020

प्रतिपादित किया। इन ग्रंथों का उद्देश्य केवल धार्मिक अनुष्ठानों का निर्देश देना नहीं था, बल्कि सामाजिक स्थिरता, पारिवारिक अनुशासन और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखना भी था।

धर्मशास्त्रीय परंपरा का स्वरूप मूलतः नियामक (normative) था, अर्थात् उसने आदर्श आचरण की रूपरेखा प्रस्तुत की। यह ध्यान देने योग्य है कि स्मृतियाँ किसी एक काल की रचना न होकर विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में विकसित हुईं और उनमें समयानुकूल संशोधन भी हुए। उदाहरणार्थ, याज्ञवल्क्य स्मृति में विधिक प्रावधान अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित एवं व्यावहारिक दिखाई देते हैं, जबकि मनुस्मृति में सामाजिक मर्यादा और वर्णाश्रम व्यवस्था पर विशेष बल है। इस परंपरा में नारी को परिवार की आधारशिला, वंश–परंपरा की संरक्षिका और धार्मिक कृत्यों की सहधर्मिणी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया, परंतु उसकी स्वतंत्रता को सामाजिक मर्यादाओं के अंतर्गत नियंत्रित भी किया गया। अतः धर्मशास्त्रीय परंपरा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे उसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक संदर्भ में देखा जाए, ताकि नारी की स्थिति संबंधी प्रावधानों का संतुलित एवं तर्कसंगत विश्लेषण किया जा सके।

## 2. Lefr;k e ukjh dk èkkfeZd ,o lkL—frd Lo:i

धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी को केवल सामाजिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की अनिवार्य धुरी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। विशेषतः मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में नारी को 'सहधर्मिणी' और 'अर्द्धांगिनी' के रूप में संबोधित किया गया है, जिसका आशय यह है कि पति के धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति उसके बिना अधूरी मानी जाती थी। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" जैसे प्रसिद्ध कथन के माध्यम से यह स्थापित किया गया कि जिस गृह या समाज में स्त्री का सम्मान होता है, वहाँ समृद्धि और देवत्व का वास होता है। यह धारणा नारी को सांस्कृतिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करती है, जहाँ वह गृहस्थाश्रम की संरक्षिका, संस्कारों की वाहिका और धर्मपालन की सहभागी मानी गई है। विवाह को धार्मिक संस्कार के रूप में मान्यता देते हुए स्त्री को पति के साथ यज्ञादि अनुष्ठानों में सहभागी होने का अधिकार दिया गया, जिससे उसकी धार्मिक उपस्थिति सुनिश्चित होती है।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भी नारी को 'गृहलक्ष्मी', 'धर्मपत्नी' और 'वंशवर्धिनी' के रूप में आदर्शीकृत किया गया। पौराणिक परंपराओं में उसे शक्ति–स्वरूपा मानकर आराधना की गई, जिससे उसकी आध्यात्मिक प्रतिष्ठा और अधिक सुदृढ़ हुई। तथापि यह आदर्शीकरण पूर्ण स्वतंत्रता का पर्याय नहीं था; इसके साथ मर्यादा, शील और आज्ञापालन जैसे गुणों को भी अनिवार्य रूप से जोड़ा गया। नारी की धार्मिक गरिमा को उसके नैतिक आचरण और पारिवारिक निष्ठा से संबद्ध किया गया, जिससे उसकी सामाजिक भूमिका एक निश्चित सांस्कृतिक ढाँचे में सीमित हो गई। इस प्रकार स्मृतियों में नारी का धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप सम्मान और मर्यादा के द्वंद्वात्मक समन्वय के रूप में उभरता हैकृजहाँ वह पूज्या भी है और नियमन के अधीन भी। अतः इस आयाम का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि धर्मशास्त्रीय परंपरा में नारी को सांस्कृतिक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठा मिली, किंतु उसकी यह प्रतिष्ठा सामाजिक संरचना के नियंत्रित दायरे में ही परिभाषित की गई थी।

## 3. ukjh dk lkekftd ,o oSèkkfud vfèkdkj

धर्मशास्त्रीय परंपरा में नारी की स्थिति का एक महत्वपूर्ण आयाम उसके सामाजिक एवं वैधानिक अधिकारों से संबंधित है। स्मृतियों में विवाह, परिवार, संपत्ति, उत्तराधिकार और संरक्षण से जुड़े प्रावधानों के माध्यम से स्त्री की सामाजिक भूमिका को विधिक स्वरूप प्रदान किया गया। विशेषतः मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में विवाह को केवल सामाजिक अनुबंध न मानकर धार्मिक संस्कार के रूप में स्थापित किया गया, जिसमें स्त्री को 'धर्मपत्नी' का दर्जा प्राप्त था। विवाह के विभिन्न प्रकारों का

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 1, Issue 1, January 2020

उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि स्त्री की वैधानिक स्थिति उसके वैवाहिक संबंध से गहराई से जुड़ी थी। पति–पत्नी का संबंध धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति का माध्यम माना गया, परंतु इस व्यवस्था में पति को प्रधान और स्त्री को सहायक भूमिका प्रदान की गई।

संपत्ति और उत्तराधिकार के संदर्भ में 'स्त्रीधन' की अवधारणा विशेष महत्व रखती है।स्मृतियों में स्त्रीधन को स्त्री की वैध संपत्ति माना गया, जिस पर उसका स्वामित्व स्वीकार किया गया। यद्यपि सामान्य पैतृक संपत्ति में पुत्रों को प्राथमिकता दी गई, तथापि स्त्रीधन के माध्यम से स्त्री को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया। इसके अतिरिक्त संरक्षणवाद की अवधारणा—"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रो रक्षति वार्धके"—स्त्री के जीवन को एक संरक्षक–व्यवस्था के अंतर्गत परिभाषित करती है। यह व्यवस्था एक ओर सुरक्षा का आश्वासन देती है, तो दूसरी ओर उसकी स्वायत्तता को सीमित भी करती है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी के सामाजिक एवं वैधानिक अधिकार एक द्वंद्वात्मक संरचना के रूप में उभरते हैं—जहाँ उसे वैध संपत्ति का अधिकार, धार्मिक सहभागिता और पारिवारिक प्रतिष्ठा प्रदान की गई, वहीं उसकी स्वतंत्रता को पितृसत्तात्मक ढाँचे में नियंत्रित भी रखा गया। अतः इन प्रावधानों का मूल्यांकन करते समय यह आवश्यक है कि उन्हें तत्कालीन सामाजिक संरचना और विधिक आवश्यकताओं के संदर्भ में समझा जाए, जिससे नारी की स्थिति का संतुलित और समग्र विश्लेषण संभव हो सके।

## 4. Lefr;k e vrkojkèk vkj ukjh dh lhek,¡

धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी की स्थिति का विश्लेषण करते समय एक महत्वपूर्ण तथ्य यह उभरकर सामने आता है कि इन ग्रंथों में नारी के प्रति दृष्टिकोण पूर्णतः एकरूप नहीं है, बल्कि उसमें स्पष्ट अंतर्विरोध विद्यमान हैं। एक ओर मनुस्मृति में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" कहकर नारी को सम्मान और समृद्धि का आधार माना गया है, तो दूसरी ओर "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" जैसे कथनों के माध्यम से उसकी स्वतंत्रता को सीमित करने का विधान भी प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में जहाँ स्त्रियों को वेदपाठ, यज्ञ और दार्शनिक संवाद में सहभागी दिखाया गया है, वहीं कुछ स्थानों पर उनके प्रति अविश्वास या आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी व्यक्त हुआ है। ये अंतर्विरोध इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि स्मृतियाँ केवल आदर्श प्रतिपादन नहीं कर रहीं थीं, बल्कि तत्कालीन सामाजिक यथार्थ और पितृसत्तात्मक संरचना के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास भी कर रही थीं।

नारी की सीमाएँ मुख्यतः उसकी स्वायत्तता, शिक्षा, उत्तराधिकार और सार्वजनिक जीवन में सहभागिता से संबंधित थीं। संरक्षण की अवधारणा के अंतर्गत उसे आजीवन पुरुष–आश्रित माना गया, जिससे उसकी स्वतंत्र निर्णय क्षमता पर प्रतिबंध लग गया। उत्तरवैदिक काल से स्त्रियों के उपनयन संस्कार और वेदाध्ययन पर अंकुश लगाए जाने के संकेत मिलते हैं, जो उनकी बौद्धिक स्वतंत्रता के संकुचन को दर्शाते हैं। सामाजिक मर्यादा, शील, पतिव्रत धर्म और आज्ञापालन जैसे गुणों को स्त्री के आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया गया, जिससे उसका व्यक्तित्व एक निश्चित सांस्कृतिक साँचे में सीमित हो गया।

इस प्रकार स्मृतियों में नारी का स्वरूप सम्मान और नियंत्रण के द्वंद्व से निर्मित प्रतीत होता है। यह अंतर्विरोध केवल ग्रंथों की वैचारिक अस्पष्टता नहीं, बल्कि उस युग की सामाजिक संरचना का दर्पण है, जहाँ स्त्री की गरिमा को स्वीकार करते हुए भी उसकी स्वतंत्रता को नियंत्रित करना आवश्यक समझा गया। अतः इन सीमाओं और अंतर्विरोधों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि धर्मशास्त्रीय परंपरा में नारी की स्थिति को समझने के लिए उसे ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों में व्याख्यायित करना अनिवार्य है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 1, Issue 1, January 2020

### 5. mÙkjofnd ,oa eè;dkyhu ifjorZuksa dk çHkko

वैदिक काल के पश्चात् उत्तरवैदिक युग में सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव नारी की स्थिति पर पड़ा। प्रारंभिक वैदिक काल की अपेक्षाकृत उदार व्यवस्था धीरे–धीरे अधिक संगठित और रूढ़ होती गई। धर्मसूत्रों और स्मृतियों के माध्यम से सामाजिक नियमों का अधिक विधिक एवं संस्थागत स्वरूप सामने आया। इस काल में स्त्रियों के उपनयन संस्कार का लोप, वेदाध्ययन पर प्रतिबंध तथा विवाह की आयु में कमी जैसे परिवर्तन उनकी बौद्धिक और सामाजिक स्वायत्तता के ह्रास के संकेतक माने जाते हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था अधिक सुदृढ़ हुई और स्त्री की भूमिका को मुख्यतः गृहस्थ जीवन तक सीमित कर दिया गया।

मध्यकाल में राजनीतिक अस्थिरता, आक्रमणों और सामंती संरचनाओं के उदय ने स्त्री की स्थिति को और अधिक प्रभावित किया। पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह और सती–प्रथा जैसी कुप्रथाओं का विस्तार इसी सामाजिक परिवेश में हुआ। शिक्षा के अवसर सीमित होते गए और स्त्री का सार्वजनिक जीवन से लगभग बहिष्कार होने लगा। यद्यपि भक्ति आंदोलन के दौरान स्त्री–संतों ने आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई, फिर भी व्यापक सामाजिक स्तर पर स्त्रियों की स्थिति दयनीय बनी रही। इस प्रकार उत्तरवैदिक और मध्यकालीन परिवर्तनों ने नारी की सामाजिक गरिमा को क्रमशः सीमित करते हुए उसे अधिक निर्भर और नियंत्रित भूमिका में स्थापित कर दिया।

### 6. ledkyhu Hkkjrh; lekt esa ukjh dh fLFkfr

आधुनिक भारत में स्त्री की स्थिति में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और गरिमा को मौलिक अधिकारों के रूप में स्थापित किया। विधिक सुधारों के माध्यम से स्त्रियों को उत्तराधिकार, संपत्ति, विवाह और शिक्षा के क्षेत्र में समान अधिकार प्रदान किए गए। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन के पश्चात् पुत्रियों को पैतृक संपत्ति में समान अधिकार प्राप्त हुआ, जो ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में भी महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ी है। वे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा अन्य उच्च पदों पर आसीन हुई हैं। शिक्षा और रोजगार के अवसरों के विस्तार ने उनकी आर्थिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ किया है। तथापि सामाजिक स्तर पर लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा और असमान वेतन जैसी समस्याएँ अभी भी विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विधिक समानता के बावजूद सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन की प्रक्रिया अभी अधूरी है।

### 7. Lefr;ksa dk iquikB% ijaijk vkSj vkèkqfudrk dk la;ksx

समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो जाता है कि धर्मशास्त्रीय ग्रंथों का पुनर्पाठ किया जाए। स्मृतियों को उनके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ से पृथक कर केवल आधुनिक मानकों के आधार पर आंकना न्यायसंगत नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि उनमें निहित मूल उद्देश्यों—सामाजिक संतुलन, पारिवारिक स्थिरता और सांस्कृतिक निरंतरता—को समझते हुए यह देखा जाए कि वर्तमान परिस्थितियों में उनका पुनर्संदर्भीकरण कैसे किया जा सकता है।

नारीवादी विमर्श और समकालीन सामाजिक चिंतन ने स्मृतियों के कई प्रावधानों की आलोचना की है, विशेषकर संरक्षणवाद और पितृसत्तात्मक नियंत्रण के संदर्भ में। परंतु पुनर्पाठ की प्रक्रिया यह भी दर्शाती है कि स्मृतियों में नारी के सम्मान, सहधर्मिता और गरिमा के तत्व भी निहित हैं, जिन्हें आधुनिक समानता और न्याय की अवधारणाओं के साथ समन्वित किया जा सकता है। इस प्रकार परंपरा और आधुनिकता के मध्य संवाद स्थापित कर एक संतुलित सामाजिक दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है, जो न तो अंधानुकरण पर आधारित हो और न ही पूर्ण अस्वीकार पर।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 1, Issue 1, January 2020

## fu"d"k

प्रस्तुत शोध के समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि धर्मशास्त्रीय परंपरा में नारी की स्थिति न तो पूर्णतः अवनत थी और न ही पूर्णतः स्वतंत्र; बल्कि वह सम्मान और नियंत्रण, अधिकार और मर्यादा, सहभागिता और आश्रयकृइन सभी तत्वों के जटिल समन्वय से निर्मित थी। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा अन्य स्मृति–ग्रंथों में नारी को 'सहधर्मिणी', 'अर्द्धांगिनी' और 'गृहलक्ष्मी' के रूप में प्रतिष्ठा दी गई, वहीं उसकी स्वायत्तता को संरक्षणवादी ढाँचे में सीमित भी किया गया। वैदिक काल में उपलब्ध अपेक्षाकृत स्वतंत्रता उत्तरवैदिक और मध्यकालीन परिवर्तनों के साथ क्रमशः संकुचित होती गई, जिससे नारी की सामाजिक स्थिति में गिरावट आई। इस ऐतिहासिक विकासक्रम से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री–स्थिति किसी एक धार्मिक विधान का परिणाम नहीं थी, बल्कि राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से गहरे रूप में प्रभावित थी।

समकालीन भारतीय समाज में संवैधानिक प्रावधानों और विधिक सुधारों ने स्त्री को समानता, शिक्षा, संपत्ति और राजनीतिक भागीदारी के व्यापक अवसर प्रदान किए हैं। तथापि सामाजिक व्यवहार में परंपरागत मानसिकता के अवशेष अब भी विद्यमान हैं, जो यह दर्शाते हैं कि विधिक परिवर्तन के साथ सामाजिक चेतना का रूपांतरण भी आवश्यक है। इस संदर्भ में स्मृतियों का पुनर्पाठ अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। यदि उन्हें उनके ऐतिहासिक संदर्भ में समझा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि उनका मूल उद्देश्य सामाजिक संतुलन और सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखना था। अतः आज की आवश्यकता यह है कि परंपरा के सकारात्मक तत्वों—जैसे सहधर्मिता, पारिवारिक सहयोग और नारी–गरिमा—को आधुनिक समानता और न्याय के सिद्धांतों के साथ समन्वित किया जाए।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति निरंतर परिवर्तनशील प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें निरंतरता और परिवर्तन दोनों साथ–साथ चलते रहे हैं। धर्मशास्त्रीय परंपरा और समकालीन नारी–विमर्श के मध्य संवाद स्थापित कर ही एक संतुलित और समावेशी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की जा सकती है। यह शोध इस दिशा में एक प्रयास है, जो यह प्रतिपादित करता है कि नारी को न तो केवल अतीत की मर्यादाओं में सीमित किया जा सकता है और न ही परंपरा से पूर्णतः विच्छिन्न कर देखा जा सकता है; बल्कि उसके ऐतिहासिक अनुभव और आधुनिक अधिकारों के मध्य समन्वय स्थापित कर ही वास्तविक सामाजिक संतुलन संभव है।

## lanHk xzFk lph

1. बाला देवी. भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की, वैदिक तथा मध्यकाल की स्थिति की तुलनात्मक सामाजिक विवेचना।
2. मिनाक्षी देवी एवं डॉ. नाहिद अहमद. प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति।
3. मनुस्मृति।
4. याज्ञवल्क्य स्मृति।
5. नारद स्मृति।
6. ऋग्वेद 7.31; 5.08; 1.105.02; 1.131.3; 5.43.15; 3.55.4; 1.122.2; 10.85.38; 10.85.44; 10.85.46; 10.85.47; 10.85.81; 6.6.1; 7.8–10; 7.39–40।
7. गोभिल गृह्यसूत्र 11-1-19।
8. वृहदारण्यक उपनिषद् 6.2.7।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 1, Issue 1, January 2020

**9-** मैत्रायणी संहिता 3.6.3।

**10-** ऐतरेय ब्राह्मण 7.29।

**11-** गाबा, ओम प्रकाश. भारतीय राजनीतिक विचारक, पृ. 20।

**12-** मजूमदार, आर.सी. द वैदिक एज, पृ. 394।

**13-** ज्ञानी, शिवदत्त. वैदकालीन समाज, पृ. 151, 157।

**14-** जातक, भाग 1, पृ. 221; 5.52